इकाई 2 साम्राज्यवाद और उसके सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक प्रभाव

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य

इस इकाई में हम भारतीय समाज पर उपनिवेशवाद के प्रभाव के विस्तृत अध्ययन के साथ भारत में ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन के आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक प्रभावों की भी चर्चा करेंगे। यह इकाई यह दर्शाती है कि औपनिवेशिक शासन बनाये रखने का एक उपकरण यह औपनिवेशिक अवस्था थी न कि भारतीय अर्थ-व्यवस्था और समाज के आधुनिकीकरण का एक उपकरण। यह इकाई पढ़ने के बाद आप इन बातों को समझने में सक्षम होंगे :

- यूरोपीय तथा भारतीय राष्ट्रीयतावादियों द्वारा प्रतिपादित उपनिवेशवाद के विभिन्न सिद्धांत
- अनौद्योगीकरण तथा कृषि के व्यावसायीकरण के संदर्भ में उपनिवेशवाद का भारतीय अर्थव्यवस्था पर प्रभाव
- भारत में आधुनिक उद्योगों का उदय तथा भारतीय पूंजीपति वर्ग की भूमिका
- औपनिवेशिक प्रक्रिया के कुछ राजनैतिक पहलू

2.1 प्रस्तावना

उपनिवेशवाद की प्रकृति तथा भारत पर इसके आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक प्रभाव को समझने के लिए यह जरूरी है कि उपनिवेशवाद को विश्व प्ररिप्रेक्ष्य में समझा जाये। यदि हम इसको सिर्फ भारत के परिप्रेक्ष्य में देखेंगे तो हम साम्राज्यवाद की संरचना के तर्क को समझ नहीं पायेंगे। इससे हमें यही लगेगा कि यह सब कुछ उन चंद व्यक्तियों के कारण हुआ जो भारत में ब्रिटिश शासक और योजना निर्माता थे। इस संदर्भ में पहले भी इन बातों की ऐतिहासिक आलोचना हो चुकी है कि कैसे एक उद्देश्यहीन गवर्नर जनरल या एक बुरे प्रबंधक या इंग्लैंड की जनता की नकारात्मक राय के कारण भारतीय जनता के लिए बुरी परिस्थितियों का निर्माण हुआ, ब्रिटिश साम्राज्य के समर्थकों ने भी कई बार इन्हीं अच्छी-बुरी नीतियों पर ही अपने विचार व्यक्त किये। यहाँ तक कि प्रारंभिक राष्ट्रवादी नेता साम्राज्य के बारे में इस सतही धारणा से पूरी तरह मुक्त नहीं थे। वे ब्रिटिश शासन के शोषक और दमनशील रूप को समझाने में तो समर्थ रहे किंतु उसे विस्तृत परिप्रेक्ष्य में देख नहीं सके, जिसे बाद के आलोचकों ने, मार्क्सवाद से प्रभावित आलोचकों को मिलाकर, पूंजीवादी साम्राज्यवाद या पूंजीवादी विश्व व्यवस्था के संदर्भ में उपनिवेशवाद को देखा। और इस प्रकार भारतीय साम्राज्य के ऐतिहासिक विकास को इन विभिन्न पहलुओं के साथ समझने में हमारी मदद की है। औपनिवेशिक विस्तार की इस घटना के प्रति समझ की इस दूसरी प्रक्रिया की जड़ें बीसवीं शताब्दी के प्रारंभिक आलोचकों—हॉब्सन, हिलफर्डिंग, रोजा लक्जेमबर्ग और लेनिन, के यहाँ देखी जा सकती हैं। भारत में यह प्रक्रिया या पद्धति कई विद्वानों के अलावा एम० एन० राय, जवाहरलाल नेहरू और आर० पी० दत्त द्वारा विकसित की गयी।

2.2. उपनिवेशवाद के सिद्धांत

आइए उपनिवेशवाद से संबंधित यूरोपीय एवं भारतीय राष्ट्रवादियों द्वारा प्रस्तुत सिद्धांतों को जाँचे।

2.2.1 यूरोपीय दृष्टिकोण

अब हम उपनिवेशवाद के संदर्भ में यूरोपीय विद्वानों के साथ ही भारतीय विद्वानों द्वारा प्रतिपादित विभिन्न सिद्धांतों का परीक्षण करेंगे।

मार्क्सवाद से बहुत अलग हॉब्सन, रीतिबद्ध ब्रिटिश लेबर पार्टी का एक विद्वान था, जिसने औपनिवेशिक साम्राज्य निर्माण का सिद्धांत प्रतिपादित किया। (उसका प्रमुख कार्य इंपीरियलिज्म (Imperialism) 1902 में प्रकाशित हुआ था। उसका विचार था कि पूंजीवाद का विस्तार या साम्राज्यवाद में परिवर्तित होना एक नियति है। उसने बताया कि पूंजीवाद प्रणाली का अर्थ है — आय का बहुत अधिक असमान वितरण। पूंजीवादियों के हाथ में लाभ का बहुत बड़ा हिस्सा पहुँच जाता है और श्रमिकों की मजदूरी बहुत कम होती है। इस प्रकार कामगारों की इतनी बड़ी संख्या में आय का स्तर बहुत कम रहता है। इसका परिणाम क्या होता है? "कम खपत" के कारण सभी औद्योगिक उत्पाद जिनका उत्पादन किया जाता है, वे देश के भीतर नहीं बेचे जा सकते, क्योंकि वहाँ, कोई खरीदार ही नहीं है। उन परिस्थितियों में पूंजीवादी क्या करें? वह कोशिश करता है कि इस अतिरिक्त उत्पाद को, जिसे देश के बाजारों में नहीं बेचा जा सकता है उसे विदेशी बाजारों में बेचा जाय। यदि सभी पूंजीवादी देश इस नीति को अपनाने लगें तो उपनिवेश के रूप में विजित बाजार तथा विजित बाजारों की सुरक्षा के लिए संघर्ष होगा। इस प्रकार हॉब्सन के अनुसार औपनिवेशिक विस्तार और विभिन्न देशों के पूंजीपतियों के बीच संघर्ष पूंजीवादी प्रणाली का अवश्यंभावी परिणाम था। आगे उपरोक्त "कम खपत" की बाधा के कारण लंबे समय के लिए पूंजीपति के लिए पूँजी निवेश के अवसर सीमित हो जाते हैं। दूसरी ओर आय बढ़ती जाती है और बचत निवेश होने का इंतजार करती रहती है। यह वह है जिसे हॉब्सन ने "अतिरिक्त बचत" कहा है, जो पूंजीपति को औपनिवेशिक विस्तार के लिए उकसाती है..... उपनिवेशों की प्राप्ति से अतिरिक्त पूंजी का निवेश संभव है। संक्षेप में "कम खपत" और "अतिरिक्त बचत" के हॉब्सन के सिद्धांत यही बताते हैं कि औपनिवेशिक विस्तार या साम्राज्यवाद पूंजीवादी प्रणाली का तार्किक परिणाम है।

हॉब्सन की पुस्तक के प्रकाशन के आठ वर्ष बाद रूडोल्फ हिलफर्डिंग ने वित्तीय पूंजीवाद पर केंद्रित एक महत्वपूर्ण विश्लेषण 1910 में प्रकाशित किया। एक सामाजिक लोकतंत्रवादी, एक प्रतिभाशाली अर्थशास्त्री और कुछ समय के लिए जर्मनी के वित्त-मंत्री हिलफर्डिंग को हिटलर और नाजीवाद के उदय के साथ भागकर पेरिस में शरण लेनी पड़ी थी और जब जर्मनी सेना द्वारा पेरिस पर कब्जा कर लिया गया था तब हिलफर्डिंग को पकड़कर मार डाला गया। मध्य-यूरोपीय समाजवादी आंदोलन के इस साहसी नेता को पूँजीवाद के अंतिम दौर के गहन विश्लेषण के लिए जाना जाता है। हिलफर्डिंग ने बताया कि इसके अंतिम दौर में पूंजीवाद बड़े-बड़े बैंकों और वित्तीय संसाधनों के दबाव में रहता है जो इजारेदार औद्योगिक व्यावसायिक घरानों के साथ मिलकर काम करते हैं। वित्तीय पूँजीवाद के इस विश्लेषण को वी. आई. लेनिन ने अपनी पुस्तिका "साम्राज्यवाद, पूंजीवाद की अंतिम अवस्था" (1916) में और बढ़ाया है। पूंजी के संचय और साम्राज्यवादी विस्तार की विभिन्न अवस्थाओं पर 1913 में रोजा लक्जेमबर्ग ने अपनी पुस्तक का प्रकाशन किया। यूरोपीय समाजवादी आंदोलन में उसने राजनैतिक और सैद्धांतिक स्तर पर एक विशेष छाप छोड़ी और वह नाज़ियों के शिकार होने तक इसमें अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती रही। जहाँ तक लेनिन का सवाल है, यहाँ यही कहा जा सकता है कि उसने साम्राज्यवाद पुस्तिका इसलिए लिखी ताकि वह विश्वयुद्ध की ओर ले जाने वाले पूंजीवादी तंत्र को बेनकाब कर सके। उसका अंतिम उद्देश्य यही था कि वह रूसी जनता को युद्ध में जाने से बचा सके जो पश्चिमी यूरोप के वित्तीय इजारेदारों के हित-संघर्ष के कारण शुरू हुआ था। वह विवादी लेखन का एक बहुत सफल हिस्सा है जिसने मार्क्सवादी इतिहास लेखन को गहरे तक प्रभावित किया।

2.2.2 भारतीय राष्ट्रवादी दृष्टि कोण

हॉब्सन हिलफर्डिंग और लेनिन द्वारा विकसित साम्राज्यवाद की इस आलोचना से अलग भारतीय राष्ट्रवादियों ने भारत पर औपनिवेशिक आर्थिक प्रभाव की तीखी और प्रभावशाली आलोचना पर विद्वतापूर्ण लेखन किया। दादाभाई नौरोजी, महादेव गोविन्द रानाडे और रोमेश दत्त तथा कई लोगों ने अपने लेखन द्वारा, जिन्होंने राष्ट्रवादी आर्थिक विचारधारा का विकास किया, ब्रिटिश शासन के अंतर्गत भारत के विशिष्ट अनुभवों पर प्रकाश डालते हुए उनका विश्लेषण किया। इस विश्लेषण के प्रमुख तत्व इस प्रकार हैं :

i) नौरोजी और दत्त के लेखन में संपत्ति दोहन (धन की निकासी) के विचार को विकसित किया गया है। उनके लिए इसका अर्थ था—संपत्ति का स्थानांतरण : 18वीं शताब्दी से ईस्ट इंडिया कंपनी के कर्मचारियों द्वारा लूट खसोट तथा गैर कानूनी फायदों के रूप में तथा गृह-शुल्कों, यानी इंग्लैण्ड में भारत की सरकार का खर्च मुख्यतः भारतीय जनता से विभिन्न करों के रूप में प्राप्त धन से किया जाता था, और अंततः निजी खातों के भारत से इंग्लैंड में पूंजी स्थानांतरण, लाभ और ब्याज आदि के रूप में।

   राष्ट्रवादी विचारकों ने बतलाया कि किस तरह इन विभिन्न रूपों में पूँजी या संपत्ति दोहन के कारण इस देश की दशा कमजोर हुई और भारत तथा इंग्लैंड के बीच आर्थिक अंतर में वृद्धि हुई जो संपत्ति दोहन की एक नीति थी।

ii) उन्होंने यह भी बताया कि कैसे ब्रिटिश शासन ने भारत के लघु उद्योगों को तहस-नहस किया, इस प्रक्रिया को आजकल अनौद्योगीकरण के नाम से जाना जाता है।

iii) राष्ट्रवादियों का तर्क था कि मुक्त व्यापार तथा अहस्तक्षेप के विचार ने शुल्क तथा औद्योगिक नीतियों का निर्धारण किया जिसके कारण ब्रिटिश भारत में औद्योगिक विकास की संभावनाओं का खात्मा हो गया। परिणामस्वरूप भारत औद्योगिक इंग्लैंड के लिए "कृषि भूमि" बन गया, यानी इंग्लैंड से औद्योगिक आपूर्ति पर पूर्णतया निर्भर खाद्यान्न तथा कच्चे माल का एक स्रोत।

iv) कृषि में करों की दर की आर० सी० दत्त ने खूब आलोचना की है, उनके अनुसार खासकर उन क्षेत्रों में जहाँ समय-समय पर स्थायी भूमि-व्यवस्था थी, पर भूमि-राजस्व का भार बहुत अधिक था, उनके विचार से ब्रिटिश-भारत में समय-समय पर उभरनेवाली भूखमरी का यह कारण था, ग्रामीण क्षेत्रों से राजस्व एकत्र करने वाली मशीनरी द्वारा संपत्ति का शोषण किया गया, जिसके कारण आर्थिक स्तर पर खेती में इतनी अनिश्चितता हो गयी कि किसान बरसात न होने तथा अन्य प्राकृतिक आपदाओं के कारण उभर नहीं पाता था।

v) और अंत में भारत में ब्रिटिश आर्थिक नीतियों के राष्ट्रवादी विश्लेषण का प्रमुख हिस्सा सरकार की सेना, पुलिस तथा अन्य विभागों में होने वाले खर्च की आलोचना है, यह खर्च इतना अधिक था कि विकास में लगने वाले पूँजीनिवेश को नकार दिया गया। उदाहरण के लिए सिंचाई-कार्यों में इतने कम खर्च का प्रावधान था जिसे ब्रिटिश इंडिया आर्मी और रेलवे के उदार खर्च को समाने रखकर साफ-साफ समझा जा सकता है।

उपरोक्त मुद्दों पर हम बाद में विस्तार से चर्चा करेंगे। फिलहाल इस पर ध्यान दिया जाये कि इन दोनों विचारधाराओं, यूरोपीय समाजवादी साथ ही भारतीय राष्ट्रवादी की आलोचना का बहुत बड़ा हिस्सा यूरोप में वित्तीय पूँजीवाद तथा औद्योगिक पूंजीवाद की स्थिति से उपनिवेशवाद के दौर को जोड़ता है। (कृपया इकाई एक में "उपनिवेशवाद की अवस्थाएं" देखें) आगे यह भी देखा जा सकता है कि भारतीय राष्ट्रवादी आलोचना स्वभावतः "औपचारिक साम्राज्यवाद" की चारित्रिक विशेषताओं की ओर इशारा करती है। "औपचारिक साम्राज्यवाद" यानी ब्रिटिश साम्राज्यवादी ताकत के अंतर्गत उपनिवेश में औपचारिक राजनैतिक अधीनस्थीकरण के अंतर्गत भारत में देखा गया साम्राज्यवाद। हॉब्सन हिल फर्डिंग आदि ने साम्राज्यवाद का एक सामान्य तरीके से अध्ययन किया जिसमें उन्होंने "अनौपचारिक साम्राज्यवाद" को ध्यान में रखा जिसमें उपनिवेश का राजनैतिक अधीनीकरण भले ही न हुआ हो लेकिन महानगरीय औपनिवेशिक संबंधों में आर्थिक उपनिवेशवाद की चारित्रिक विशेषताएँ दिखायी देती हैं। (उदाहरण के लिए चीन और लातीनी अमरीकी देश) और अंत में हम यह भी देख सकते हैं कि भारतीय राष्ट्रवादियों, नौरोजी, रानाडे और आर० सी० दत्त द्वारा विकसित की गयी पद्धति से बिल्कुल अलग हॉब्सनकारी या लेनिनवादी पद्धति ने उपनिवेशवाद को पूंजीवादी व्यवस्था से जोड़ा हॉब्सन तथा अन्य विद्वानों के लिए औपनिवेशिक शोषण पूंजीवाद का एक प्राकृतिक तर्कपूर्ण उत्पादन था, जैसा यूरोप में दिखाई दिया। केवल इसलिए नहीं कि गलत नीतियों के कारण ऐसा हुआ। संपूर्ण रूप में भारतीय राष्ट्रवादियों द्वारा साम्राज्यवाद की आलोचना प्रभावित जनता के लिए तथा जन चेतना जगाने के लिए एक महत्वपूर्ण हथियार साबित हुई।

बाद में जवाहरलाल नेहरू जैसे राष्ट्रवादी प्रवक्ताओं ने मार्क्सवादी हॉब्सनवादी तथा लेनिनवादी पद्धतियों के कुछ तत्वों को अपनाकर साम्राज्यवाद को समझने की इस प्रक्रिया को और मजबूत तथा विकसित किया।

बोध प्रश्न 1

1 निम्नलिखित वाक्यों को पढ़कर सही (√) या गलत (X) का निशान लगाइये :

i) हॉब्सन के अनुसार "कम खपत" और "अधिक बचत" के कारण उपनिवेशवाद को बढ़ावा मिला।

ii) हिल्फर्डिंग तथा रोजा लक्जमबर्ग ने उपनिवेशवाद के सकारात्मक पक्षों की ओर ध्यान दिलाया।

iii) यूरोपीय सिद्धांतकार उपनिवेशवाद को पूँजीवाद की संरचना से जोड़ते हैं।

iv) प्रारंभिक राष्ट्रवादी अपने विचारों में यूरोपीय विद्वानों के अनुयायी थे।

2 उपनिवेशवाद को समझाने में प्रारंभिक राष्ट्रवादी नेताओं के योगदान पर अपने विचार लिखिए। दस पंक्तियों में।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

3 "औपचारिक साम्राज्यवाद" तथा "अनौपचारिक साम्राज्यवाद" शब्द से आप क्या समझते हैं? लगभग सौ शब्दों में उदाहरण सहित लिखिए।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

2.3 उपनिवेशवाद के प्रभाव

उपनिवेशवाद की विभिन्न अवस्थाओं के बारे में आप इकाई एक में पढ़ चुके हैं। लेकिन इस अवस्थाओं ने भारतीय अर्थव्यवस्था को किस तरह प्रभावित किया? औपनिवेशिक नीतियों के कारण शिल्पकार, कृषक, कामगार, व्यापारी यानी भारतीय समाज के लगभग सभी तबके प्रभावित हुए थे। इस खण्ड में हम उपनिवेशवाद के आर्थिक प्रभाव जानने का प्रयास करेंगे।

2.3.1 अनौद्योगीकरण

इस देश में पारंपरिक भारतीय उद्योगों का खातमा उपनिवेशवाद के प्रारंभिक परिणामों में से एक था जिसे देखा और लिखा गया। यद्यपि यह बात इंग्लैंड में आधुनिक कारखानों, उद्योगों के विकास और भारतीय हस्तशिल्प उद्योगों के विनाश की शुरुआत से जुड़ी हुई है। फिर भी हम 18 वीं शताब्दी से इस बात को समझना चाहेंगे, जब वाणिज्य में भारतीय उद्योगों के उत्पाद की कीमत ऊँची मानी जाती थी। व्यावसायिक पूँजीवाद के उस दौर में ईस्ट इंडिया कंपनी के लाभ का स्रोत भारतीय औद्योगिक उत्पादों का भारत में लागत मूल्य तथा इंग्लैंड में विक्रय-मूल्य का अंतर था, जैसे सूती और सिल्क वस्त्र। यह मूल्य-अंतर जिसे हम अंग्रेजी ईस्ट इंडिया कंपनी का लाभ-दर कह सकते हैं, ज्यादा बढ़ाया जा सकता था यदि ईस्ट इंडिया कंपनी द्वारा खरीदे गये उत्पाद का भारतीय लागत-मूल्य भारतीय शिल्पकारों को कम दिया जाए। जब तक भारतीय बाजारों में प्रतिस्पर्धा थी, यानी जब तक अंग्रेजी ईस्ट इंडिया कंपनी दूसरी फ्रांसीसी, डच ईस्ट इंडिया कंपनियों के साथ-साथ भारतीय तथा एशियाई मूल के व्यापारियों के साथ प्रतिस्पर्धा रहेगी, भारतीय शिल्पकार अपने उत्पाद का अच्छा मूल्य प्राप्त करने की अवस्था में रहेगा। लेकिन 18 वीं शताब्दी के अंतिम दशकों में अंग्रेजों ने अपने प्रमुख प्रतिस्पर्धियों, विशेषकर फ्रांसीसी और डच को धीरे-धीरे हटाना शुरू कर दिया। इसके अलावा अपनी सैनिक ताकत के चलते, और कुछ क्षेत्रों में (उदाहरण के लिए 1765 में) राजनैतिक तथा प्रशासनिक नियंत्रण के कारण बंगाल में उन्हें बाजार में एकाधिकार जमाने या इजारेदार बनने में मदद की।

इंग्लिश कंपनी तथा उसके कर्मचारियों द्वारा वैयक्तिक खरीददारी मिलाकर इतनी हो जाती थी कि वह बंगाल में अच्छी किस्म के वस्त्रों का एक बहुत बड़ा हिस्सा खरीद लेते थे। जैसा कि हम सब जानते हैं कि एक इजारेदार अपने लाभ के लिए बाजार को प्रभावित कर सकता है। 18 वीं शताब्दी के अंतिम तीन दशकों तक अंग्रेज व्यापारियों को यह लाभ था जिसके चलते इस देश के शिल्पकारों को दिया जाने वाला मूल्य उन्होंने कम कर दिया जिससे यूरोपीय बाजारों में इस माल की बिक्री का लाभ बहुत अधिक बढ़ गया। भारतीय शिल्पकारों के इस अतिरिक्त शोषण ने उनकी आय का स्तर बहुत नीचा करके हस्तशिल्प उद्योगों के प्रभुत्व अधिकार को ही कमजोर कर दिया। इसने उद्योगों में पूँजीनिवेश तथा उसके तकनीकी विकास के लिए संसाधनों को जोड़ने की संभावनाओं को ही नष्ट कर दिया। जैसा कि हम जानते हैं, कि 18 वीं शताब्दी के अंतिम तथा 19 वीं शताब्दी के प्रारंभिक दशकों में इंग्लैंड में पूँजी जमाव और एक तकनीकी क्रांति हुई थी: इस तकनीकी क्रांति ने सबसे पहले यूरोप के बाजारों से भारतीय शिल्पकारों को एकदम हटा दिया। क्योंकि नये अंग्रेजी कारखानों में बड़ी मात्रा में उत्पादनों के कारण भारतीय शिल्पकारों के लिए यह संभव नहीं था कि वे कारखाना उत्पाद से प्रतियोगिता कर सकें। 19 वीं शताब्दी की शुरूआत् से देश औद्योगिक निर्यात सूती वस्त्र आदि का निर्यात धीरे-धीरे कम होने लगा और जल्द ही बंद हो

गया। कुछ और चीजें जैसे नील, अपरिष्कृत सिल्क का निर्यात होता रहा—यद्यपि सन् 1813 से ईस्ट इंडिया कंपनी नहीं, बल्कि निजी संस्थान निर्यात का काम करने लगे थे। विदेशी कारखानों ने न सिर्फ भारतीय शिल्पकारों से निर्यात बाजार ही छीना, बल्कि घरेलू बाजारों को भी आयातित उत्पादों से भर दिया।

इस प्रक्रिया को अनौद्योगीकरण कहा गया है, क्योंकि यह औद्योगीकरण की प्रक्रिया से बिल्कुल विपरीत है।

यहाँ पर हम 19 वीं शताब्दी में भारत में अनौद्योगीकरण के प्रश्न पर हुए विवाद की ओर ध्यान देंगे। रमेशचंद्र दत्त और मदनमोहन मालवीय ने भारतीय औद्योगिक आयोग को लिखे विरोध-पत्र में अपना पक्ष साबित करने के लिए आयात के आंकड़ों का उपयोग किया था। उन्होंने दर्शाया, उदाहरण के लिए, कि सन् 1860 में आयातित मैनचेस्टर कपड़ों का मूल्य 96 लाख स्टर्लिंग था जो सन् 1900 में बढ़कर 27 करोड़ स्टर्लिंग हो गया। हाल ही में कुछ लेखकों, विशेषकर मॉरिस डेविड मॉरिस, ने तर्क दिया कि यह प्रमाण निर्णायक नहीं है। उन्होंने बताया कि "पैक्स ब्रिटेनिका" के अंतर्गत जनसंख्या बढ़ गयी थी, प्रति व्यक्ति आय बढ़ गयी थी, खपत की आदतों में परिवर्तन के कारण वस्त्रों की बिक्री बढ़ गयी थी और इसलिए भारतीयों के लिए यह संभव था कि देशी शिल्पकारों के लिए बाजारों को अप्रभावित छोड़कर वे विदेशी वस्त्र खरीद सकें। संक्षेप में मॉरिस का तर्क यह है कि बाजारों की क्षमता इतनी बढ़ गयी थी कि वे मैनचेस्टर तथा भारतीय करघा उत्पादों, दोनों को शामिल कर सकें। मॉरिस इसी बात पर कायम है कि मैनचेस्टर वस्त्रों ने देशी बुनकरों के वस्त्रों को हटाया नहीं था। मॉरिस का यह विचार स्वीकार योग्य नहीं है, क्योंकि उसने 19वीं शताब्दी में जनसंख्या तथा प्रति व्यक्ति आय की वृद्धि का कोई तथ्य प्रस्तुत नहीं किया है। अनौद्योगीकरण की धारणा को बल देने वाले बहुत सारे तथ्यों को आधुनिक आर्थिक इतिहासकारों, जैसे शरद राजू (मद्रास), एन.के. सिन्हा (बंगाल), ए.वी. रामन राव (आंध्र प्रदेश), आर.डी. चौकसे (महाराष्ट्र) और ए.के. बाग्ची (बिहार) आदि, ने प्रस्तुत किया है। प्रारंभिक राष्ट्रवादी अर्थशास्त्रियों के पास आधुनिक आर्थिक इतिहासकारों द्वारा उपयोग में लाये जाने वाले स्रोतों का भंडार तथा शोध-पद्धतियाँ नहीं थी, फिर भी अनौद्योगीकरण के उनके निष्कर्ष को बाद के शोध- कर्त्ताओं ने पुष्ट किया। बाग्ची के अनुमान के अनुसार दोआब (मध्यगंगा क्षेत्र) में औद्योगिक पतन को कुछ विशुद्धता के साथ नापा जा सकता है: उद्योगों पर आश्रित व्यक्तियों की संख्या 1809-13 से जनगणना वर्ष सन् 1901 तक घटकर आधी रह गयी थी।

यह सिद्ध हो चुका है कि 19वीं शताब्दी के अंतिम दशक तक अनौद्योगीकरण की प्रक्रिया लगातार चल रही थी। क्या 19वीं शताब्दी के आखिरी दशक में नयी औद्योगिक गतिविधियों ने सामंजस्य बनाये रखा? डेनियल थॉर्नर ने एक विवादास्पद धारणा प्रस्तुत की कि सन् 1881 के बाद से उपलब्ध जनगणना के आँकड़े यह नहीं बताते हैं कि सन् 1881 से सन् 1931 तक अनौद्योगीकरण प्रगति पर था — पहली दृष्टि में जनगणना के आँकड़े यह दर्शाते हैं कि कृषि में पुरुष कार्य शक्ति 1881 के 65 प्रतिशत की तुलना में बढ़कर 1931 में 72 प्रतिशत हो गयी, जबकि सन् 1881 में औद्योगिक पतन का अनुपात 16 प्रतिशत से 1931 में 9 प्रतिशत रहा। लेकिन थॉर्नर का मानना है कि यह श्रेणीकरण भ्रांतिपूर्ण था और कृषि कार्य शक्ति को दूसरी श्रेणियों, सामान्य श्रमिक और इसी तरह के अन्य श्रमिकों से मिला देने पर व्यापार के साथ औद्योगिक कार्यशक्ति में वृद्धि होती है। यदि इसे मान लिया जाय तो पूरा दृश्य बदला हुआ दिखायी देता है। प्राथमिक क्षेत्र में संयोजित श्रेणियों की वृद्धि बहुत कम दिखायी देती है। (1881 और 1931 में 2 प्रतिशत वृद्धि) इसी तरह उद्योग तथा व्यवसाय दोनों को मिलाकर गिरावट भी बहुत कम है (1881-1931 में केवल 3 प्रतिशत गिरावट)। आगे थॉर्नर महिला श्रम-शक्ति से संबंधित आँकड़ों को भी इस आधार पर गलत बताते हैं कि जनगणना अधिकारियों के विचार में जो आँकड़े एकत्रित किए गए वे सही नहीं थे, और इस प्रकार थॉर्नर इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि 1881-1931 की जनगणना अनौद्योगीकरण का कोई समुचित आधार प्रस्तुत नहीं करती है।

थॉर्नर की धारणा के विरोध में एक सर्वविदित तथ्य यह है कि अनौद्योगीकरण की प्रक्रिया ने जनगणना के कार्य के पहले ही बहुत नुकसान कर दिया था। पहली विश्वसनीय जनगणना 1881 की मानी जाती है। इतना तो थॉर्नर स्वयं ही मानते हैं दूसरी यह कि महिलाओं के रोजगार से संबंधित आँकड़ों को नकारने में वे शायद गलत हैं। यह आँकड़े दर्शाते हैं कि 1881-1931 के दौरान कृषि में रोजगार 13 प्रतिशत बढ़ा, वहीं औद्योगिक रोजगार में 9 प्रतिशत की गिरावट आयी। भारतीय सामाजिक संदर्भ में महिलाओं का रोजगार बहुत महत्वपूर्ण है और यह शायद इस कारण हुआ कि शिल्पकारी के व्यापार में पतन होने के कारण घरेलू महिलाओं ने शिल्पकार परिवारों के पुरुषों से पहले ही औद्योगिक कार्य छोड़ दिया — (घरेलू कामकाज या कृषि श्रम के लिए)। इसके ऊपर सवाल यह है कि कार्यशक्ति के क्षेत्रीय-वितरण को औद्योगिकरण का कितना विश्वसनीय सूचक माना जाए? निर्णायक सूचक प्रति व्यक्ति उत्पादकता और राष्ट्रीय उत्पाद की तुलना में उसका मूल्य है, यानी राष्ट्रीय आय का अनुपात। थॉर्नर के दिये गए तर्कों के प्रति जयकृष्ण मूर्ति इसी धरातल पर जनसांख्यिकीय आँकड़ों के उपयोग पर शंका करते हुए उस प्रश्न का जवाब देते हैं कि क्या अनौद्योगीकरण था? और अंत में हमें यह भी ध्यान रखना चाहिए कि एक महत्वपूर्ण विचारधारा साम्राज्यवादी समर्थकों की थी जो यह तो मानते थे कि भारत का अनौद्योगीकरण हुआ है लेकिन साथ ही इस बात का भी तर्क देते हैं कि कृषिगत वस्तुओं के उत्पादन में उपनिवेश ने विशेषता हासिल कर ली इसलिए यह भारत और इंग्लैंड दोनों के लिए अच्छा था। जैसा कि 1911 में लॉर्ड जॉन मेनार्ड किन्स ने लिखा है कि भारत का औद्योगिकरण न तो संभव था न ही आवश्यक। वास्तव में भारत कृषि उत्पादों का पश्चिम से आयातित औद्योगिक वस्तुओं के साथ आदान-प्रदान कर ज्यादा समृद्धि हासिल कर सकता था। यह विचार तुलनात्मक लाभ और श्रम के अंतर्राष्ट्रीय विभाजन के पारंपरिक सिद्धांत की ओर ले जाता है और औद्योगीकृत साम्राज्यवादी देश के लिए भारत जैसे उपनिवेशों को कृषि-भूमि बनाने में मदद करता है। राष्ट्रवादी अर्थशास्त्रियों की सबसे महत्वपूर्ण उपलब्धि यह थी कि उन्होंने इस विचार को परास्त किया और स्वतंत्रता संग्राम के राजनैतिक कार्यक्रम में भारतीय औद्योगीकरण के आर्थिक कार्यक्रम को स्थापित किया।

2.3.2 औपनिवेशिक भारत में अकाल

यदि उपनिवेशवाद का अर्थ है पुराने उद्योगों का विनाश, तो क्या इसे कृषिगत उत्पादन में वृद्धि मानें? इसका उत्तर संभवतः नकारात्मक ही निकले। जब हम 1898 से 1947 तक की अनाज के प्रति व्यक्ति और प्रति एकड़ उत्पादकता को देखते हैं तो निश्चित रूप से इसका उत्तर नकारात्मक होता है। जहाँ तक प्रारंभिक पचास वर्षों की बात है बार-बार पड़ने वाले अकाल-भुखमरी अपनी कहानी स्वयं कहते हैं:

19वीं शताब्दी के मध्य से पड़ने वाले कई अकालों ने भारत की अवस्था दयनीय बना दी। निम्नलिखित आँकड़ों में हमने विभिन्न अकालों को दर्शाया, जिसे अंग्रेजी सरकार ने भी स्वीकार किया —

भारतीय उपनिवेश में अकाल
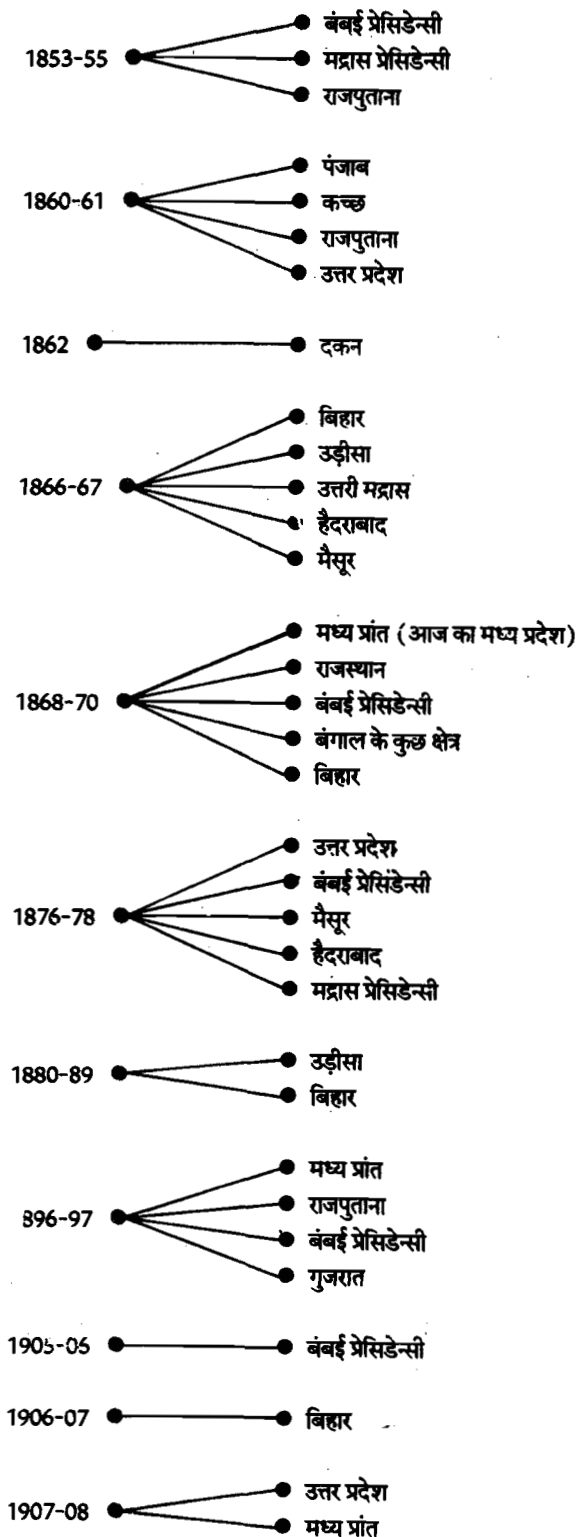
इन आंकड़ों में कुछ देशी राज्यों का समावेश किया गया है और उन क्षेत्रों के नामकरण में हुए विभिन्न बदलावों के कारण कुछ जगह (यानी उत्तर प्रदेश, मध्यप्रदेश) वर्तमान राज्यों के नाम का उल्लेख किया गया है। एक आधिकारिक अनुमान के अनुसार इन अकालों में एक करोड़ 52 लाख व्यक्तियों को अपने जीवन से हाथ धोना पड़ा और 29.7 करोड़ लोग इन विभिन्न अकालों से प्रभावित रहे।

यह बड़ी संख्या इस बात का द्योतक है कि लगातार संकट की अवस्था बनी रही। निश्चित रूप से इसका तात्कालिक कारण सूखा और फसल की बर्बादी रहा लेकिन इसकी जड़े वहाँ हैं जिसे खेतिहर उत्पादन की "सामान्य दर" कहा जाता है। कृषि तकनीक में स्थिरता, प्रति एकड़ पैदावार बढ़ाने में निवेश की असफलता, राजस्व दलालों द्वारा कृषि योग्य स्रोतों का दोहन और महाजन तथा कृषि वस्तुओं के व्यापारी भी बहुत महत्वपूर्ण पहलू थे। सिंचाई एवं अन्य विकासशील निवेशों में सरकार का अत्यल्प निवेश और 1920 के बाद से जनसंख्या में तीव्र वृद्धि भी औपनिवेशिक कृषक "नियमितत" बनाने में जिम्मेदार रही है। खाद्यान्न आपूर्ति के मामले में सामान्य अवस्था का एक महत्वपूर्ण सूचक भारत में खाद्यान्न की प्रति व्यक्ति उपलब्धिता है। इस संबंध में 1901 से 1943 तक की अवधि के तीन आकलन हमारे पास उपलब्ध हैं। ब्रिटिश भारत के लिए इन वर्षों में जॉर्ज ब्लिन के अनुमान या आकलन के अनुसार प्रति व्यक्ति खाद्यान्न उपलब्धता 0.23 टन से घटकर 0.16 टन रह गयी। शिव-सुब्रमन्यन के अनुमान के अनुसार संपूर्ण अविभाजित भारत में यह गिरावट 0.2 टन से 0.14 तक हुई। एलेन हेस्टन के अनुसार यह गिरावट 0.17 टन (1901) से 0.16 टन (1946) रही। इस प्रकार ये सारे आकलन यह दर्शाते हैं कि खाद्यान्न आपूर्ति में ब्रिटिश शासन के पचास वर्षों में गिरावट आयी, हालांकि ये आँकड़े एक दूसरे से अलग-अलग हैं।

2.3.3 कृषि का व्यावसायीकरण

जैसा कि हम देख चुके हैं कि खाद्यान्न उत्पादन में कोई सुधार नहीं हुआ लेकिन यह बात कुछ तथाकथित "नकद फसलों" के लिए सही नहीं थी। गैर खाद्य फसलों का कुल और प्रति व्यक्ति उत्पादन दोनों ही बढ़े और यह मुख्यतः मांग में बढ़ोतरी तथा बाहरी एवं घरेलू बाजारों में कीमतें बढ़ने के कारण हुआ। इस प्रकार की सबसे अधिक नाटकीय बढ़ोतरी 1860 के आरंभिक वर्षों में कपास की उछाल में देखी जा सकती है जो हमारा विशेष ध्यान खींचती है।

अब्राहम लिंकन द्वरा काले दासों की मुक्ति और अमेरिका में लगातार गृह-युद्ध के कारण 1860-64 के दौरान कपास की विश्व आपूर्ति में गंभीर गिरावट आयी। इसके कारण भारत से निर्यातित कपास के मूल्यों में वृद्धि हुई और भारत में कपास की खेती बढ़ी। कपास के इस उछाल ने कपास उगाने वाले क्षेत्र के भारतीय कृषकों को विश्व पूंजीवादी व्यवस्था के क्षेत्र में ला दिया। कपास की उस उछाल के कारण बंबई के महत्वपूर्ण निर्यात घरानों, बड़े शहरों के थोक-व्यापारियों, कपास निर्यात व्यापार के दलालों तथा अन्य व्यक्तियों से लेकर गाँव के महाजन, जो कृषक को कपास की खेती के लिए अग्रिम धन भी दे देता था, गाँव के महाजन के स्तर तक सभी लोगों ने भरपूर लाभ उठाया। इस लाभ के साथ ही पहले से ही अन्य व्यावसायिक फसलों जैसे अफीम और नील, के लाभ के कारण सारी पूंजी चंद भारतीय व्यापारियों के हाथों में सिमट कर रह गयी। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि कपास के इस उछाल ने भारत को औद्योगीकृत पश्चिम की कृषिगत वस्तुओं तथा कच्चे माल की जरूरतों के आपूर्तिकर्त्ता का स्थान दे दिया। इससे अनौद्योगीकरण की प्रक्रिया को बढ़ावा मिला। कृषि में उपनिवेश द्वारा विशिष्टीकरण की भूमिका तथा पश्चिम में औद्योगीकृत देश इन्हें श्रम के अंतर्राष्ट्रीय विभाजन के समकालीन सिद्धांत में साफ-साफ दर्शाया गया है। यह सिर्फ भारत और इंग्लैंड में ही नहीं पाया गया बल्कि औद्योगिक पूंजीवादी साम्राज्यवाद की अवस्था में अन्य उपनिवेशों तथा महानगरीय क्षेत्रों में भी पाया गया।

कृषि उत्पादन के आँकड़े जहाँ गैर खाद्य-उत्पाद में वृद्धि दिखाते हैं वहीं खाद्यान्न उत्पादन में एकदम विपरीत स्थिति दिखाई पड़ती है। जहाँ 1891 से 1947 के बीच जनसंख्या में प्रति वर्ष 0.67 प्रतिशत की वृद्धि दिखाई देती हैं। वहीं कुल खाद्यान्न उत्पादन केवल 0.11 प्रतिशत बढ़ा दिखाई देता है; इस अवधि में प्रति एकड़ प्रतिवर्ष खाद्यान्न उत्पादन में 0.18 प्रतिशत की गिरावट भी दिखाई पड़ती है। दूसरी ओर बाजार में बढ़ती हुई माँग तथा बढ़ती हुई कीमतों के कारण उच्च व्यवसायिक गैर खाद्य फसलों के उत्पादन में 0.86 प्रतिशत प्रतिवर्ष और उनके कुल उत्पाद में 1.31 प्रतिशत प्रतिवर्ष की वृद्धि दिखाई पड़ती है। गैर खाद्य फसलों में प्राथमिक तौर पर कपास और जूट हैं लेकिन साथ ही तम्बाकू, गन्ना, तिलहन आदि शामिल हैं।

2.3.4 व्यावसायीकरण का ग्रामीण समाज पर प्रभाव

कृषि के व्यावसायीकरण ने व्यापारिक पूंजी और सूदखोरी को जन्म दिया और ग्रामीण समाज में कृषकों के बीच के अंतर को और अधिक बढ़ाया। सामान्य किसान की उधार के लिए महाजन पर निर्भरता बढ़ गयी थी। यह धन उसे फसलों की खरीदारी मंदी के मौसम में जीविकोपार्जन के लिए कर्ज के रूप में लेना पड़ा जैसे-जैसे व्यावसायीकरण बढ़ता गया भूराजस्व के भुगतान के लिए भी देनदार-व्यापारी नकद आपूर्ति करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते रहे और महाजन आयातित औद्योगिक उपभोक्ता वस्तुओं, विशेष रूप से मैनचेस्टर वस्त्रों का ग्रामीण बाजारों में एक प्रमुख एजेंट बनकर उभरा।

जब गरीब खेतिहर बाजार के लिए फसलें उगा रहे थे वस्तुतः उस समय वे देनदार या महाजन के हाथों गिरवी हो चुके थे, खेतिहरों का थोड़ा संपन्न वर्ग तुलनात्मक रूप से स्वतंत्र था। ये लोग अपने सामानों का भंडारण कर सकते थे और कटाई के बाद भरे हुए बाजार में बेहतर कीमतों का इंतजार भी कर सकते थे। ये लोग अपनी उपज को बाजार तक ले जाकर महाजन और दलालों द्वारा गाँव में दी जाने वाली कीमत से ज्यादा कीमत पर बेच सकते थे। इसके अलावा वे इस बात का भी निर्णय कर सकते थे कि कौन सी फसल उगाई जाये जबकि गरीब खेतिहर वही फसल उगाने पर मजबूर था जो महाजन चाहता था। कुछ क्षेत्रों में ये संपन्न किसान स्वयं ही गरीब किसानों के महाजन बन बैठे। और इस प्रकार विभेदीकरण या विशिष्टीकरण की प्रक्रिया तीव्र हो गयी।

विशिष्टीकरण की इस प्रक्रिया और पैसों के लेन-देन के इस व्यापार के चलते बड़ी संख्या में खेतीहरों की जमीन छिन गयी और "गैर कृषिकरण" की प्रक्रिया के कारण वे भूमिहीन श्रमिकों में परिवर्तत हो गये। यहाँ इस बात पर जरूर ध्यान दिया जाये कि औपनिवेशिक अवधि के पहले भी भूमिहीन श्रमिक अस्तित्व में थे (विशेषकर दक्षिण भारत में कुछ जातियों के लोग बड़ी संख्या में दास थे)। गैर कृषिकरण की इस आर्थिक प्रक्रिया और भूमिहीन श्रमिकों की यह बड़ी संख्या औपनिवेशिक काल की एक प्रमुख विशेषता के रूप में उभर कर सामने आयी।

1931 की जनगणना से ग्रामीणों की सामाजिक दशा का जो चित्र सामने आता है, इस पिरामिड में सबसे नीचे भूमिहीन कृषि श्रमिक (बंधुआ श्रमिकों को मिलाकर) हैं, जो खेतिहरों का 37.8 प्रतिशत हैं। इसके ऊपर 5 एकड़ से भी कम जमीन वाले छोटे किसान (9 प्रतिशत) तथा पट्टेदारों और बटाईदार (24.3 प्रतिशत) हैं। दूसरी ऊपरी सतह पर थोड़ी बेहतर स्थिति वाले किसान हैं जिनके पास 5 एकड़ से अधिक जमीन हैं। ये कुल 25-30 प्रतिशत हैं और इस पिरामिड के सबसे ऊपरी हिस्से में वे लोग हैं जो खुद खेती नहीं करते हैं लेकिन लगान या किराया वसूल करते हैं। ये कुल खेतिहरों का मात्र 3.6 प्रतिशत हैं। सबसे बुरी हालत बंधुआ मजदूर की थी। इसे नीचे दिये गये त्रिभुजाकार आरेख से भी समझा जा सकता है।
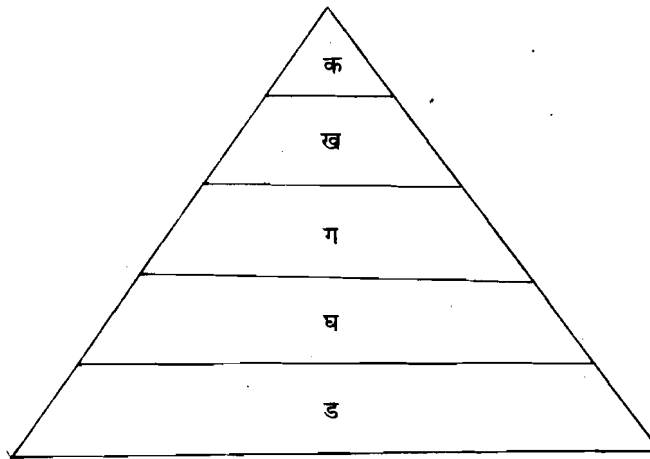
क	-	संपन्न किसान	-	3.6 प्रतिशत
ख	-	बेहतर किसान	-	25.3 प्रतिशत
ग	-	छोटे किसान	-	9 प्रतिशत
घ	-	बटाईदार	-	24.3 प्रतिशत
ङ	-	भूमिहीन किसान	-	37.8 प्रतिशत

1931 की गणना के अनुसार उपलब्ध आँकड़ों के अनुसार प्राप्त दृश्य।

सबसे बुरी हालत बंधुआ मजदूर की थी जो अपने मालिक के लिए जीवन भर और कभी-कभी पीढ़ी-दर-पीढ़ी काम करता रहता था। इस वर्ग की स्थिति में सुधार के प्रयास तथा पट्टेदारी के विषय में (इकाई-29, खंड 5) बाद में चर्चा की जाएगी।

बोध प्रश्न 2

1 मॉरिस डी. मॉरिस और डेनियल थॉर्नर किस आधार पर अनौद्योगीकरण की धारणा से इंकार करते हैं? क्या आप उनके विचारों से सहमत हैं?

2 निम्नलिखित वाक्यों को पढ़कर सही (✓) या गलत (×) का निशान लगाइए :
   i) जे. कृष्णमूर्ति का विचार है कि जनसांख्यिकी आँकड़े अनौद्योगीकरण के प्रश्न का उत्तर दे सकते हैं।
   ii) आर.सी. दत्त का विचार है कि भारत में अनौद्योगीकरण नहीं था।
   iii) 19वीं शताब्दी में लगातार पड़े अकालों को खाद्य-फसलों के कम उत्पादन द्वारा नहीं समझाया जा सकता है।
   iv) कृषि के व्यावसायीकरण का अर्थ है नकद फसलों की खेती में अचानक वृद्धि।

3 निम्नलिखित शब्दों को पाँच पंक्तियों में समझाइए।
   क) कपास-उछाल

....
....
....
....
....

ख) श्रम का अंतर्राष्ट्रीय विभाजन

....

....

....

....

....

2.4 आधुनिक उद्योग और भारतीय पूंजीपति वर्ग

औपनिवेशिक राज्य के औद्योगिक पूंजीवादी साम्राज्यवाद के रूप ने प्राकृतिक स्रोतों और कच्चे माल के शोषण के लिए इस उपनिवेश में एक आर्थिक कार्यक्रम का ढाँचा भी शामिल कर लिया, उस पहलू पर हम शीघ्र ही चर्चा करेंगे। फिलहाल यही बताना पर्याप्त होगा कि इन संरचनात्मक विकास, विशेषकर रेलवे और यातायात प्रणाली ने, न केवल कुछ क्षेत्रों (उदाहरण के लिए जूट कारखानों, कोयला खदानों, चाय-कॉफी बागानों) में विदेशी पूंजी के विकास के लिए बल्कि देशी पूंजी के लिए भी मार्ग प्रशस्त किया। ब्रिटिश भारतीय सरकार का प्रतिकूल शुल्क दर नीतियों तथा मैनचेस्टर वस्त्रों से प्रतिस्पर्धा के बाद भी देशी पूंजी का सबसे पहला औद्योगिक निवेश वस्त्रोद्योग में किया गया। 1854 में बंबई में पहली भारतीय कपड़ा मिल की स्थापना से लेकर प्रथम विश्व युद्ध तक भारतीय औद्योगिक पूंजी की प्रगति धीमी और स्थिर रही। वह युद्ध और युद्ध के बीच का समय था जिसने भारतीय पूंजी की औद्योगिक विवधिता के तीव्र विकास को देखा। यह विकास विदेशी पूंजीवादी प्रधानता से संघर्ष का एक हिस्सा था (स्पष्टतया पूर्वी भारत में)। इस विकास ने असंवेदनशील ब्रिटिश भारतीय सरकार तथा अंग्रेजी सरकार की नीतियों को प्रभावित करने वाली अंग्रेजी व्यापारिक रूचियों के खिलाफ संघर्ष को भी शामिल कर लिया। इससे हम भारतीय पूंजीपति वर्ग तथा उन राष्ट्रवादी नेताओं के बीच हुए गठबंधन को समझ सकते हैं जो देशी पूंजी के समर्थक थे।

एक औपनिवेशिक संदर्भ में राष्ट्रीय पूंजी का विकास स्वाभाविक रूप से सीमित रहा। औपनिवेशिक औद्योगिक विकास के मार्ग बहुत ही कम थे। राष्ट्रीय आय के बारे में शिव सुब्रमण्यन् द्वारा किये अनुमान से ही पता चल जाता है कि अंग्रेजी राज के अंतिम 50 वर्षों में भी औद्योगिक विकास की दर बहुत कम थी। एक औसत के आधार पर कुल राष्ट्रीय उत्पाद के अनुपात में औद्योगिक क्षेत्र का हिस्सा 1900-1904 में 12.7 प्रतिशत, 1915-19 में 16.7 प्रतिशत, और 1940-44 में 16.7 प्रतिशत था। यानी भारत वहीं रहा जहाँ वह था, कृषि प्रधान।

यह स्पष्ट है कि कुल राष्ट्रीय उत्पाद में प्राथमिक क्षेत्रों द्वारा अर्जित आय का अनुपात 1900-04 में 63.6 प्रतिशत, 1915-19 में 59.6 प्रतिशत और 1940-44 में 47.6 प्रतिशत था। केवल तृतीय क्षेत्र में तीव्र वृद्धि दिखाई पड़ती है; 1900-04 में 23.7 प्रतिशत की तुलना में 1940-44 में 35.4 प्रतिशत की वृद्धि।

दूसरे कई औपनिवेशिक तथा औद्योगिक रूप से पिछड़े हुए देशों के समान ही भारत की राष्ट्रीय आय का स्तर स्थिर ही दिखाई देता है। प्रारंभिक अंग्रेजी राज के समय में राष्ट्रीय आय का कोई सूचक उपलब्ध नहीं है। दादाभाई नौरोजी के आकलन के अनुसार 1860 में भारत में प्रतिवर्ष प्रति व्यक्ति आय मात्र 20 रुपये थी। हम यह पहले ही देख चुके हैं कि किस प्रकार दादाभाई नौरोजी तथा अन्य राष्ट्रवादी नेताओं ने भारत की इस दरिद्र अवस्था के लिए पूंजी दोहन को एक कारण माना था। इस काल में, स्पष्टतया 1870 में, (मिशेल और डीन के आकलन के अनुसार) इंग्लैंड में प्रतिवर्ष प्रति व्यक्ति आय 24 डॉलर 4 स्टर्लिंग थी, (भारतीय रुपयों में 568 रुपये)।

शिव सुब्रमण्यन् द्वारा हाल ही में किये गये आकलन के अनुसार अंग्रेजी राज के अंतिम 50 वर्षों में प्रति व्यक्ति आय लगभग स्थिर ही रही। यह 1900-04 में 52.2 रुपये, 1915-19 में 57.3 रुपये और (1938-39 की वे[illegible]थर मूल्य पर) 1940-44 में 56.6 रुपये थी। इससे हमें उस अल्प विकास और स्थिरता का आभास मिलता है जिससे औपनिवेशिक भारत पीड़ित था।

2.5 औपनिवेशिक शासन

उपनिवेशवाद के राजनैतिक प्रभाव और स्वतंत्रता संघर्ष के दौरान उपनिवेशवाद के विरोध का विषय इस अध्ययन में बाद में (खंड 2, 4 और 5 में) देखा जाएगा। यहाँ हम केवल औपनिवेशिक प्रक्रिया के कुछ राजनैतिक पहलुओं पर चर्चा करेंगे। औपनिवेशिक राज्य का आविष्कार इसलिए नहीं किया गया था कि अंग्रेजी साम्राज्यवादी हितों के अनुसार वह भारतीय अर्थ-व्यवस्था को एक आकार दे बल्कि उस उद्देश्य को प्राप्त करने का यह एक प्रमुख हथियार था। 19वीं शताब्दी के अंत और 20वीं शताब्दी के शुरुआत में अंग्रेज शासकों द्वारा प्रति व्यक्ति राजनीतिक विचारधारा को "अहस्तक्षेप" और पुलिस राज के रूप में जाना जाता है। लेकिन अहस्तक्षेप से विचलन बार-बार और मौलिक रूप से होता रहा। जहाँ तक भारत जैसे उपनिवेश का संबंध है इस सिद्धांत के अनुसार पश्चिमी प्रभाव के लिए देश में "सभ्यता मिशन" चलाने के लिए बार-बार कार्यशील हस्तक्षेप की जरूरत थी। इस प्रकार उदाहरण के लिए भारतीय रेलवे में निजी अंग्रेजी पूंजी को भारी सरकारी मदद

इस गारंटी के साथ थी कि इसमें नफा-नुकसान के बावजूद उनके हितों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। स्पष्ट रूप से यह अंग्रेजी व्यापारिक हितों के लिए लाभकारी था। दूसरी ओर, अहस्तक्षेप को शुल्क दर नीतियों के घेरे में ही लागू किया गया : उदाहरण के लिए आयातित मैनचेस्टर वस्त्रों पर किसी भी तरह के शुल्क भार से इंकार अंग्रेजी हितों के लिए अच्छा और भारतीय मिल मालिकों के लिए बुरा था। दुबारा 19वीं शताब्दी के अंत और 20वीं शताब्दी के प्रारंभ में भुखमरी के दौरान सरकार द्वारा किसी भी तरह के हस्तक्षेप को हटाकर खाद्यान्न व्यापार में अहस्तक्षेप की नीति अपनायी गयी (खाद्यान्नों के निर्यात में भी)।

इंग्लैंड के राजनैतिक ढाँचे ने इस बात का विशेष ध्यान रखा कि वह संसद, भारतीय राज्य के सचिव जो ब्रिटिश कैबिनेट का सदस्य था, गवर्नर जनरल तथा भारत में उच्च प्रशासन द्वारा भारत में योजना निर्माण को महत्वपूर्ण व्यापारिक हितों के जरिये प्रभावित कर सकें। प्रथम विश्व युद्ध तक यह प्रभाव एकदम स्पष्ट थाः तथापि, बाद में ब्रिटिश भारतीय सरकार को घरेलू दबावों तथा भारतीय आवश्यकताओं के चलते कुछ समझौते करने पड़े और उनकी नीतियाँ थोड़ी उदार हुई। भारत पर शासन कायम रखने की व्यवहारिकता तथा सरकार की वित्तीय सुदृढ़ता के कारण उन्हें भारतीय पूंजीपतियों, अन्य महत्वपूर्ण हितों तथा राष्ट्रवादी दबाव के चलते कुछ समझौते करने पड़े, ये कुछ पहलू थे जिसके कारण 1920 के बाद अंग्रेजी नीतियों में उदारता आई। इन उपलब्धियों या विशेषताओं को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि 19वीं शताब्दी के मध्य से 1947 तक औपनिवेशिक शासन भारत के औपनिवेशिकरण का एक औजार था, न कि भारतीय अर्थव्यवस्था और समाज के आधुनिकीकरण का एक ज़रिया।

बोध प्रश्न 3

1 आप भारतीय पूंजीपति वर्ग और राष्ट्रवादी नेतृत्व के बीच गठबंधन को कैसे व्याख्यायित करेंगे? 50 शब्दों में लिखें।

....

....

....

....

....

....

....

2 नीचे दी गयी पंक्तियों में औपनिवेशिक शासन की प्रकृति बताएँ।

....

....

....

....

....

....

....

2.6 सारांश

औपनिवेशिक शासन तथा उपनिवेश पर उसके प्रभावों को विभिन्न विद्वानों द्वारा अलग-अलग तरीके से व्याख्यायित किया गया है। भारतीय राष्ट्रवादी विद्वानों — दादाभाई नौरोजी, महादेव गोविंद रानाडे और आर.सी. दत्त आदि ने, मुख्यतः भारतीय संदर्भ में तथा भारतीय अर्थव्यवस्था पर अंग्रेजी राज के प्रभाव की चर्चा को ही अपने विश्लेषण के केंद्र में रखा है। उन्होंने संपत्ति-दोहन तथा अनौद्योगीकरण को अंग्रेजी राज के दुष्प्रभावों के रूप में व्याख्यायित किया। दूसरी ओर यूरोपीय विद्वानों ने उपनिवेशवाद का सामान्य सर्वेक्षण किया तथा पूंजीवाद की संरचना से उसे संघटित करके देखा। हॉब्सन, हिल फर्डिंग. रोजा-लक्जेमबर्ग तथा लेनिन आदि विद्वानों ने उपनिवेशवाद को समझने में हमारी दृष्टि काफी विकसित की है।

भारत में उपनिवेशवाद के अन्य पहलुओं में कृषि का व्यावसायीकरण तथा औद्योगीकरण की प्रक्रिया की धीमी तथा असंतुलित गति प्रमुख थी। उपनिवेशवाद की आवश्यकताओं की ओर ही भारतीय अर्थ-व्यवस्था बढ़ी और औपनिवेशिक शासन ने साम्राज्यवादी हितों के लिए भारतीय अर्थव्यवस्था को गढ़ने में एक प्रमुख भूमिका निभाई। भारतीय व्यापारिक हितों के प्रति पक्षपातपूर्ण अंग्रेजी नीतियों के कारण ही औपनिवेशिक शासन और भारतीय व्यापारिक समूहों के बीच संघर्ष की स्थिति बनी जिसके परिणामस्वरूप भारतीय पूंजीपति वर्ग भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन से जुड़ गया।

2.7 शब्दावली

गैर-कृषिकरण: थोड़ी सी जमीन रखने वाले कृषकों के जमीन छीनने की प्रक्रिया, जिसके कारण वे बाद में कृषि-श्रमिक हो गये।

विशिष्टीकरण या विभेदीकरण: खेतीहरों को कई वर्गों में बाँट देना जिसके परिणामस्वरूप कुछ विशिष्ट तबके उसी वर्ग के बल पर संपन्न होते जाते हैं।

जन-सांख्यिकीय आँकड़े: जनसंख्या से संबंधित आँकड़े।

साम्राज्यवादी समर्थक: साम्राज्यवाद के प्रति नम्र दृष्टिकोण रखने वाले विद्वान वे साम्राज्यवाद के शोषक पहलुओं पर परदा डालते हुए भारत की आर्थिक अवनति के प्रति किसी भी जिम्मेदारी से उसे मुक्त करते हैं।

'अहस्तक्षेप' व पुलिस राज: देश की आर्थिक प्रक्रिया में किसी भी तरह से हस्तक्षेप न करने की नीति और पुलिस राज मुहावरे का अर्थ है कि देश में कानून-व्यवस्था बनाये रखना शासन का काम है। इस प्रकार सरकार तमाम जिम्मेदारियों से मुक्त हो जाती है।

कुल राष्ट्रीय उत्पाद (नेट डोमेस्टिक प्रोडक्ट): उद्योगों, कृषि और सेवा क्षेत्रों का मिलाजुला राष्ट्रीय उत्पाद।

प्रति-व्यक्ति आय: कुल राष्ट्रीय आय जिसे जनसंख्या से विभाजित किया जाए।

प्रति व्यक्ति उत्पादन: उत्पादन की दर जिसे बाद में कुल जनसंख्या से विभाजित किया जाए।

प्राथमिक क्षेत्र: कृषि, मत्स्य-पालन, पशुपालन और वन-उत्पाद।

उत्पादकता: उत्पादन-क्षमता।

बटाईदार: खेतीहरों का एक वर्ग जो दूसरों की जमीन पर खेती करता है या उस जमीन की देखभाल करता है तथा बदले में फसल में से हिस्सा प्राप्त करता है।

पट्टेदार: पुराने खेतीहर मालिकों का एक वर्ग जो अब नये बने हुए जमींदारों का किरायेदार हो गया है। ये जमींदार उस खेतीहर को किराया न चुकाने पर अपनी मर्जी से निकाल सकता है।

द्वितीय क्षेत्र: व्यापार और यातायात को मिलाकर सेवा-क्षेत्र।

महाजन: रुपए-पैसे देने वाला एक ग्रामीण वर्ग जो कभी-कभी खेतीहर और बाजार के बीच दलाली का काम भी करता है।

2.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1 i) √ ii) × iii) √ iv) ×
2 उपभाग 2.2.2 देखें।
3 उपभाग 2.2.2 से पता लगायें।

बोध प्रश्न 2

1 उपभाग 2.3.1 ध्यानपूर्वक पढ़ें और अपनी भाषा में उत्तर लिखें।
2 i) × ii) × iii) × iv) √
3 कृपया उपभाग 2.3.3 देखें।

बोध प्रश्न 3

1 भाग 2.4 से पता लगायें।
2 भाग 2.5 पढ़ें और उत्तर लिखें।